Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Research (JIMR)
E-ISSN:1936-6264| Impact Factor: 8.886|
Vol. 18 Issue 09, Sep- 2023
Available online at: https://www.jimrjournal.com/
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

सांस्कृतिक आलोचना की आवश्यकता और प्रो.नन्द किशोर पाण्डेय

अंजनी कुमार श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिहार (मोतिहारी)

ऐसे समय जब हिन्दी आलोचना जगत में कोई प्रभावी केन्द्रीय व्यक्तित्व उपस्थित नहीं है और पिछले कुछ वर्षों में आलोचना की सबसे सशक्त रही धारा मार्क्सवादी आलोचना की उच्छृंखलता को नियंत्रित करनेवाली आलोचना का भी अभाव दिखने लगा है, सांस्कृतिक आलोचना की आवश्यकता हिन्दी जगत को महसूस होने लगी है| जिस प्रकार अपने अंतिम वर्षों में नामवर सिंह ने पन्त के साहित्य के एक तिहाई को कूड़ा घोषित किया और उनके अनुकरण पर एक आलोचक ने तुलसी साहित्य के एक हिस्से को कूड़ेदान में डालने की वकालत की, तब से ऐसा लगा कि हिन्दी आलोचना की प्रभावी मार्क्सवादी धारा अपने आरम्भिक दौर की तरह ही उच्छृंखल हो गयी है| इधर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को लेकर एक बार फिर मार्क्सवादी आलोचना का ब्रह्मराक्षस जाग्रत हुआ और उनके इतिहास को कूड़ेदान में डालने पर विवाद प्रारम्भ हुआ है| अभी अष्टभुजा शुक्ल जैसे वरिष्ठ कवि ने तुलसी को ब्राह्मण द्रोही कहकर इसी प्रकार की टिप्पणी की है जिसे किसी तरह आलोचनात्मक और विवेकसंपन्न नहीं कहा जा सकता है| इस प्रकार के बेतुके विवाद, विवेकहीन आलोचना दृष्टि और उसे नियंत्रित करने वाले व्यक्तित्व के अभाव के कारण यह धारा अपनी आलोचनाधर्मिता खोकर असंगत और विवेकहीन विचारधारात्मक टिप्पणी मात्र रह गयी है| इन कारणों से इस धारा की आलोचना की विश्वसनीयता अब न रह गयी है| इसके साथ ही आज कुछ अस्मितावादी आलोचना धाराएँ भी सक्रिय हैं जो मार्क्सवादी आलोचना की कोख से ही पैदा हुई हैं| अपनी संकुचित और विरोधवादी दृष्टि के कारण इन आलोचना धाराओं की अपनी विश्वदृष्टि अब तक निर्मित नहीं हुई है| आलोचना के संकट के इस दौर में सांस्कृतिक आलोचना से हिन्दी जगत की उम्मीदें बंधी हैं| आज यही एक आलोचना दृष्टि है जो हिन्दी जगत में फैली विवेकहीनता और उच्छृंखलता को नियंत्रित कर हिन्दी आलोचना का पथ प्रशस्त कर सकती है|

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री, कमल किशोर गोयनका, कन्हैया सिंह और नन्द किशोर पाण्डेय जैसे व्यक्तित्वों के बावजूद आलोचना की इस धारा पर चर्चा अब तक नहीं हुई है| कुछ दिनों पूर्व प्रो. अमरनाथ ने हिन्दुत्ववादी आलोचना नाम की चर्चा अपने एक लेख में की है| लेख परिचयात्मक है, किन्तु

इसके अंतर्गत उन्होंने कुछ ऐसे नाम लिए हैं जो सांस्कृतिक आलोचना धारा में मेरे केंद्र में हैं| वस्तुत: हिन्दुत्ववादी आलोचना नाम ही असंगत है| हिंदुत्व अपने आप में इतना व्यापक और सूक्ष्म है कि इसका कोई वाद नहीं हो सकता| किन्तु, प्रो. अमरनाथ ने मार्क्सवादी आलोचना की तर्ज पर हिन्दुत्ववादी आलोचना नाम गढ़ लिया है| बहरहाल सांस्कृतिक आलोचना से हिन्दी जगत अत्यंत आशान्वित है| आज प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय इस धारा के सर्वाधिक सक्रिय आलोचक हैं इसलिए उनसे अपेक्षाएं और बढ़ जाती हैं | उन्होंने जिस प्रकार भारतीय भाषाओं के विविध कोशों का निर्माण अल्प समय में किया है तथा एक साथ विविध स्तरीय पत्रिकाओं का सफल सम्पादन किया है उससे इस अपेक्षा का होना उचित ही प्रतीत होता है|

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री, कमल किशोर गोयनका और प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय के नाम से यह नहीं समझना चाहिए कि आलोचना की यह धारा बहुत अर्वाचीन है| वस्तुत: हिन्दी आलोचना के सूत्रपात के साथ ही राष्ट्रीय-सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन-मूल्यों के आधार पर कृति के विवेचन का आरम्भ हुआ| भारतेंदु युग में प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट और बालमुकुन्द गुप्त में इसकी झलक दिखी थी, किन्तु इसका सम्पूर्ण विकास द्विवेदी युग में हुआ और यह रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना में उत्कर्ष पर पहुँची| आलोचना की यह परम्परा सौंदर्यवादी आलोचक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी को बहुत प्रिय नहीं रही| आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सांस्कृतिक परम्परा के आधार पर कृति का मूल्यांकन करते हुए भी रामचन्द्र शुक्ल की तरह कोई मानदंड ऐसा नहीं रखा जो कृति का महत्त्व सांस्कृतिक या राष्ट्रीय जीवन-मूल्य से निर्धारित करती हो| आगे मार्क्सवादी आलोचना में इन मूल्यों की उपेक्षा को ही प्रगतिशीलता मान कर व्याख्यायित किया गया| इस धारा के प्रबल होने से आलोचना और रचना के क्षेत्र में एक सांस्कृतिक-विच्छेद निर्मित हुआ| यह सांस्कृतिक-विच्छेद एक संवेदनात्मक विच्छेद भी था जिसे रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपने काव्यभाषा के उपकरण से पाटने का प्रयास किया| काव्यभाषा के उपकरण से जिस सीमा तक जाया जा सकता है, चतुर्वेदी जी गए| सर्जना की परख राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन-मूल्यों से रहित नहीं होनी चाहिए, सर्जना इन मूल्यों की अविरोधी है; इस उद्देश्य को लेकर आलोचना की एक स्वतंत्र धारा विकसित हुई है| यह सांस्कृतिक आलोचना है| आचार्य विष्णुकांत शास्त्री और कमल किशोर गोयनका के पश्चात् नन्द किशोर पाण्डेय इस धारा के प्रतिनिधि आलोचक हैं|

नन्द किशोर पाण्डेय मूलतः भक्ति-साहित्य के आलोचक हैं| उनकी आलोचना दृष्टि के निर्माण में भक्ति साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है |'संत साहित्य की समझ' और 'हिन्दी के मुसलमान कवि' जैसी उल्लेखनीय पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं| उनकी आलोचनात्मक-दृष्टि और आलोचना सम्बन्धी मान्यताओं के

Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Research (JIMR)
E-ISSN:1936-6264| Impact Factor: 8.886|
Vol. 18 Issue 09, Sep- 2023
Available online at: https://www.jimrjournal.com/
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

दर्शन इन पुस्तकों में होते हैं| सांस्कृतिक आलोचना धारा के आलोचनात्मक विवेक के अध्ययन के लिए 'संत साहित्य की समझ' को देखना समीचीन होगा| इसमें उनकी आलोचना सम्बन्धी मान्यताएं प्रकट हुई हैं| उनकी आलोचना दृष्टि अत्यंत व्यापक है | वे साहित्य को केवल काव्यशास्त्रीय उपमानों से व्याखायित करने के पक्षधर नहीं हैं –

"कविता का काव्येतर कलाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है | इस सम्बन्ध के कारण कविता का मूल्यांकन उसे कलाओं से सम्बद्ध किये बिना नहीं हो सकता| हम चाहे कितनी ही बार इस बात को क्यों न दुहरा लें कि काव्यशास्त्र में सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य अवधारणा संनिविष्ट है, लेकिन जब हम कविता का काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन करते हैं, तब हमारा ध्यान मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य तथा संगीत की ओर नहीं जाता| कविता का जो अन्य ललित कलाओं के साथ तात्विक सम्बन्ध है, इस कारण उसका सौन्दर्य शास्त्रीय मूल्यांकन होना चाहिए| कविता का क्षेत्र बहुत बड़ा होता है| इसलिए उसके मूल्यांकन का माप भी उतना ही विस्तृत होना चाहिए |" [1]

"कविता का सौन्दर्य शास्त्रीय मूल्यांकन न होने से कविता की मूल प्रेरणा या कविता के बहुत से महत्वपूर्ण अंशों का मूल्यांकन अधूरा रह जाता है | भारतीय कवियों ने अपनी कविताओं में समस्त शिल्पों, कलाओं तथा संगीत का वर्णन किया है | उसका मूल्यांकन केवल काव्यशास्त्रीय दृष्टि से करने से, समस्या उसके सम्पूर्ण मूल्यांकन में अधूरेपन की या उसके साथ न्याय न कर पाने की आती है |"[2]

प्रो. पाण्डेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और जयशंकर प्रसाद को काव्य और कला के संयुक्त अध्ययन में बाधक मानते हैं -

"आश्चर्य है कि हिन्दी में प्रकृति-चित्रण का अभाव देख कर दुखी होने वाले शुक्लजी कला और संगीत की परम्परा को काव्य से विच्छिन्न करते हुए कैसे सुख की अनुभूति करते हैं | काव्य में प्रकृति वर्णन की परम्परा को यदि वे संस्कृत की समृद्ध परम्परा मानते हैं तो उन्हें काव्य के साथ संगीत, नृत्य व् स्थापत्य के अन्तस्सम्बन्ध को भी संस्कृत की समृद्ध परम्परा मानकर स्वीकार करना चाहिए था | आचार्य प्रवर तो काव्य और कला को अलग करने पर तुले हुए हैं|"[3]

[1] नन्द किशोर पाण्डेय, संत साहित्य की समझ,रचना प्रकाशन , जयपुर,2001, पृ.129
[2] उपर्युक्त,पृ. 130
[3] उपर्युक्त, पृ. 132

Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Research (JIMR)
E-ISSN:1936-6264| Impact Factor: 8.886|
Vol. 18 Issue 09, Sep- 2023
Available online at: https://www.jimrjournal.com/
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

उपर्युक्त उद्धरणों को देखने पर पांडेयजी सौंदर्यवादी प्रतीत होते हैं| ऐसा भी प्रतीत हो सकता है कि सौंदर्यवादी आलोचक नन्ददुलारे वाजपेयी की तरह नैतिकता आदि को वे कला का बाहरी तत्व मानते हुए उसके बहिष्कार के आग्रही होंगे | किन्तु, वास्तव में ऐसा नहीं है | उनकी सौन्दर्वादी दृष्टि का तात्पर्य केवल काव्य और कला के अंत:सम्बन्ध की विवेचना का आग्रह भर से है| चित्रकला और संगीत से कविता के अंत:सम्बन्ध का विवेचन वे काव्य की सम्पूर्णता में की गयी आलोचना के लिए आवश्यक मानते हैं| संत कवियों की आलोचना के प्रसंग में वे कहते हैं " ..घटना, समय और राग, इन तीनों को छोड़कर संतों की कविता का जनसम्प्रेषण अर्थात् जनता तक पहुँचने की प्रक्रिया को ठीक -ठाक नहीं समझा जा सकता | अर्थात् जिन राग-रागिनियों के नाम संतों की जिन कविताओं से जुड़े हैं, उनकी पहचान जरूरी है | संगीत के राग और कविता के अर्थ के बीच एक जातीय और कलात्मक सम्बन्ध बनता है | इसको छोडकर संतों का आधा-तिहाई ही समझा जा सकता है|"[4]

स्पष्ट है कि पाण्डेय जी के लिए सौंदर्यशास्त्र उनकी आलोचना दृष्टि का सर्वांश नहीं बल्कि एक अंग है | वे सम्पूर्ण भारतीय चिंतन परम्परा को अपना उपजीव्य स्वीकार करते हैं और सम्पूर्णता में किसी रचना के विवेचन के आग्रही हैं | वे केवल भाषिक, काव्यशास्त्रीय अथवा सौन्दर्यशास्त्रीय आलोचना दृष्टियों के बजाय एक सांस्कृतिक निर्मिति के रूप में रचना को देखते हैं| संतकाव्य के सम्बन्ध में वे कहते हैं- "इस तरह 'बानी' और 'लिखत' की अनेक जातीय, प्रजातीय तथा साम्प्रदायिक विश्वास-परम्पराओं से संतों की पोथियों को महिमामंडित किया गया| लाखों की जिह्वा पर भजन, कीर्तन, नर्तन, पूजन, अभिमन्त्रण के माध्यम के रूप में संतों की कविता का उपयोग हुआ| अनेक निजंधर पोथियाँ संतों की कविता को लेकर लिखी गयीं |...आज संतों की कविता को इस पूरी प्रक्रिया को जाने बिना केवल शब्दार्थ विद्या या रस-अलंकार के ज्ञान से नहीं समझा जा सकता | स्थिति तो यह है कि संतों की कविता के जनसम्प्रेषण को लेकर भारतीय जाति ने जो बहुमुखी प्रयोग किये, उसकी पूरी पहचान के बिना संतों की कविता को ठीक-ठाक समझा नहीं जा सकता |"[5] यद्यपि यह संतकाव्य पर की गयी टिप्पणी है, किन्तु यह नन्द किशोर पाण्डेय की दृष्टि को स्पष्ट करने में समर्थ है कि महज काव्यशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र से कविता की व्याख्या नहीं की जा सकती | **कविता के विवेचन के लिए भारतीय जाति तथा उसकी अभिव्यक्ति के प्रयोगों की पहचान** आवश्यक है| यह अभिव्यक्ति के प्रयोग केवल साहित्य तक

[4] उपर्युक्त, प्राक्कथन, पृ.IV
[5] उपर्युक्त, पृ. II

Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Research (JIMR)
E-ISSN:1936-6264| Impact Factor: 8.886|
Vol. 18 Issue 09, Sep- 2023
Available online at: https://www.jimrjournal.com/
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

सीमित नहीं है | इसमें चित्रकला, संगीत, इतिहास आदि सब आ जाते हैं| इस प्रकार के बड़े और व्यापक धरातल पर प्रो. पाण्डेय साहित्य के मूल्यांकन और विवेचन के आग्रही हैं|

भारतीय जाति और भारतीय अभिव्यक्ति या रचनाशीलता अथवा चिन्ताधारा के सापेक्ष मूल्यांकन की प्राविधि न केवल साहित्य बल्कि अन्य स्थलों पर भी प्रो. पाण्डेय में दिखाई पडती है| स्वामी विवेकानंद के प्रसंग में प्रो. पाण्डेय ने चंडीदास, चैतन्य महाप्रभु के भक्ति-काव्य की परम्परा तथा बंगला के मंगल काव्य की ऐतिहासिक विकास परम्परा में उन्हें व्याखायित किया है | उनके अनुसार " रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानंद जैसा भक्त किसी कालखंड में अचानक उत्पन्न नहीं होता | वह एक बड़ी और समृद्ध परम्परा की चरम परिणति होता है|"[6] रवीन्द्रनाथ टैगोर प्रो. पाण्डेय के लिए इसलिए कृति व्यक्तित्व हैं कि उन्होंने भारत को भारतीय चिन्ताधारा के सन्दर्भ में व्याख्यायित किया है "रवीन्द्रनाथ ने भारतीय इतिहास की धारा को रामायण, महाभारत और बौद्ध साहित्य के सन्दर्भ में नये ढंग से पढ़ा है| इन ग्रंथों में अध्ययन के क्रम में वे एकता के सूत्र और कर्मण्य जीवन की तलाश करते हैं | दो विरोधी प्रवृत्तियों का समन्वय भारतीय साहित्य में होता रहा है| इस प्रवृत्ति ने देश को समृद्ध किया है|"[7]

ध्यातव्य है कि समन्वय भारतीय जाति की प्रमुख विशेषता है | प्रो. पाण्डेय के विवेचन में यह शब्द बार-बार आता है| संघर्ष की तुलना में समन्वय उन्हें वरेण्य है| मार्क्सवादी आलोचना की धारा जिसके लिए संघर्ष ही मूल ध्येय है| हिंसा ही क्रान्ति का मूल है| इस धारणा को सांस्कृतिक आलोचना अस्वीकार करती है| विनोबा भावे के सन्दर्भ में प्रो.पाण्डेय ने न केवल उनके साहित्य की धारणा में निहित अहिंसा को स्वीकार किया है बल्कि वामपंथी हिंसात्मक रवैये की भी आलोचना की है जो दो वर्गों के संघर्ष को ही अपना उपजीव्य स्वीकार करती है| वे इस धारणा को निरस्त करते हुए वे कहते हैं " रक्तिम क्रान्ति से ही गरीबों को भूमि मिल सकती है इस धारणा को पचास और साठ के दशक में विनोबा जी ने ध्वस्त कर दिया|"[8] वे विनोबा भावे के सर्वोदय की चर्चा करते हुए उनके 'अन्त्योदय' शब्द के अस्वीकार की भी चर्चा करते हैं और 'सर्वोदय' नाम से सहमति भी व्यक्त करते हैं| सर्वोदय जहां सबके उदय की बात करता है अन्त्योदय एक वर्ग विशेष तक सीमित रहता है| वर्ग विशेष के स्थान पर सबकी बात करना-सर्वे भवन्तु सुखिन: भारतीय मनीषा का प्रमुख गुण है|

[6] शैक्षिक उन्मेष, अप्रैल-जून 2018, पृ. 6
[7] शैक्षिक उन्मेष, अप्रिल-जून 2019, पृ. 16
[8] शैक्षिक उन्मेष, जनवरी-मार्च 2019, पृ. 15

Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Research (JIMR)
E-ISSN:1936-6264| Impact Factor: 8.886|
Vol. 18 Issue 09, Sep- 2023
Available online at: https://www.jimrjournal.com/
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

प्रो.पाण्डेय विनोबा भावे की तरह समन्वयवादी और सर्वजन हिताय की अवधारणा के पोषक के रूप में सामने आते हैं| आज के अस्मितावादी विमर्शों के दौर में जब समग्रता और समन्वय के स्थान पर विखंडन और संघर्ष महत्पूर्ण हो गया है; सर्वजन की बात करनेवाले साहित्य और आलोचना की आवश्यकता बढ़ गयी है| सांस्कृतिक आलोचना की बढती जिम्मेदारियों के युग में प्रो. पाण्डेय विनोबा के सर्वोदय और मालवीय जी के अभ्युदय की सर्वजन केन्द्रित अवधारणा को लेकर सामने आते हैं | अस्मिता केन्द्रित आलोचना और विमर्श जहाँ जीवन दृष्टि को संकुचित करते हैं, पांडेयजी की आलोचना इस संकुचित दृष्टि को तोडती है | सांस्कृतिक आलोचना का महत्त्व वस्तुतः जीवन दृष्टि के विस्तार में ही है| प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय सांस्कृतिक आलोचना के इस गुरुतर भार का वहन करते हैं |

महामना मदन मोहन मालवीय जी पर लिखते हुए प्रो. पाण्डेय कहते हैं "महामना ने अभ्युदय में लिखा कि थोड़े से मनुष्यों के सुख को 'अभ्युदय' नहीं कहा जा सकता| यानी वे समाज के सभी वर्गों के सुख की कामना कर रहे थे| सुख की प्राप्ति जिन मार्गों से स्थायी रूप से होती है उसकी बात प्राय: धर्मोपदेशक करते हैं | महामना जैसा शिक्षाविद, प्रखर सामाजिक कार्यकर्ता, अपने समय का शिखर राजनेता तथा युग प्रवर्तक पत्रकार स्थायी सुख के लिए जिन विषयों की चर्चा कर रहा था आज का बुद्धिजीवी वर्ग उस प्रकार से लिखना तो दूर अपनी विचार सरणी में ही इस विषय को नहीं ला पाएगा| महामना ने धर्म की चर्चा विशेष रूप से सनातन धर्म की चर्चा बार-बार की है |"[9] यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि किसी विशेष वर्ग के सुख से महत्त्वपूर्ण है सबका सुख| धर्मविहीन सुख अस्थायी होता है| इसलिए सुख की कामना करनेवाले का धर्मयुत होना आवश्यक है| अनादिकाल से धर्म मनुष्य की प्रेरणा रहा है| भक्तिकाल से लेकर नवजागरण तक हिन्दी साहित्य में धर्म महत्वपूर्ण रहा | किन्तु, मार्क्सवादी आलोचना धारा के प्रबल होते ही धर्म की चर्चा मात्र अकादमिक और बौद्धिक जगत से बहिष्कृत हो गयी| आचार्य विष्णुकांत शास्त्री ने निराला की भक्ति कविता के सम्बन्ध में मार्क्सवादी आलोचना की अस्वस्थ दृष्टि पर विचार किया है| उनके अनुसार " मैं इन मतों को मार्क्सवादी आलोचना की स्थूलता और विफलता का उदहारण मात्र मानता हूँ| मार्क्सवादियों के भरसक विरोध के बावजूद आध्यात्मिकता और भक्तिचेतना हिन्दी के प्रतिनिधि काव्य में निराला, पन्त , दिनकर, बच्चन, अज्ञेय, भवानीप्रसाद मिश्र, कुंवरनारायण जैसे वरेण्य कवियों की कृतियों में प्रतिफलित होती रही, उनके क्षोभ का बड़ा कारण यही है|"[10]मार्क्सवादी आलोचना के इस क्षोभ से कबीर आदि को भी व्याखायित करने में बड़ी असंगति हुई |

[9] शैक्षिक उन्मेष , अक्टूबर-दिसंबर 2018, पृ.10

[10] विष्णुकांत शास्त्री,चुनी हुई रचनाएं खंड -1, श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय, कोलकाता,2003, पृ. 235

Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Research (JIMR)
E-ISSN:1936-6264| Impact Factor: 8.886|
Vol. 18 Issue 09, Sep- 2023
Available online at: https://www.jimrjournal.com/
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

निराला और पन्त की इस तरह की कविताओं को या तो छोड़ दिया गया है या उन पर कटु टिप्पणियां की गयी हैं| इस प्रकार एक सांस्कृतिक और संवेदनात्मक विच्छेद मार्क्सवादी आलोचना ने उत्पन्न किया है|

विचारधारा द्वारा धर्म के बहिष्कार से उत्पन्न सांस्कृतिक विच्छेद की समस्या से सांस्कृतिक आलोचना जूझती है| सांस्कृतिक आलोचना धर्म की नवीन व्याख्या में प्रवृत्त होती है और स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द आदि नवजागरण कालीन चिंतकों का आश्रय ग्रहण करती है | भारतेंदु युगीन साहित्यकारों- भारतेंदु हरिश्चन्द्र,प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन और बालकृष्ण भट्ट की भांति प्रो. पाण्डेय भी धर्म को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हैं| स्वामी विवेकानंद ने जिस प्रकार धर्म को भारत का प्राणभूत तत्व माना है उससे प्रो. पाण्डेय सहमत प्रतीत होते हैं| स्वामी जी पर की गयी उनकी टिप्पणी इसका प्रमाण है -"धर्म को लेकर वे इतने सचेत हैं कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी प्रकार की कमियाँ उनके लिए ख़ास महत्त्व नहीं रखतीं | यदि अध्यात्म की शिक्षा मजबूत हो तो कोई आध्यात्मिकता को ही जीवन का स्वत्व मान सकता है | यदि अध्यात्म की धारणा शुद्ध एवं सशक्त है तो बाकी कुछ स्वत: ठीक हो जाएगा|"[11]यह धर्म राष्ट्रभक्ति का साधक है| मालवीय जी पर टिप्पणी करते हुए प्रो. पाण्डेय इसकी चर्चा करते हैं " देश के कार्य के लिए धर्म के प्रति निष्ठा को महामना अनिवार्य शक्ति मानते हैं | बहुत सूक्ष्मता से मालवीय जी ने धर्म और कर्तव्य को देशप्रेम और देश के प्रति निष्ठा के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया है |[12]

भारतीय जाति न केवल धर्म बल्कि इसके व्यावहारिक रूप आचरण को भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानती है| यही कारण है कि सांस्कृतिक आलोचना परम्परा रचनाकार के जीवन और आचरण से असम्बद्ध होकर नहीं चलती | यह परम्परा रचना और जीवन में द्वैत देखने की आग्रही नहीं| विचार के साथ आचार भी पवित्र होना चाहिए | प्रो. पाण्डेय अपने विवेचन में सदैव इस बात की ओर ध्यान दिलाते रहते हैं कि आचार कोई बाहरी वस्तु नहीं| स्वामी विवेकानंद पर लिखते हुए वे कहते हैं " स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन में 'आचार' बहुत महत्त्वपूर्ण है | वे आचार में आहार और विहार दोनों को सम्मिलित करते हैं| अचार भ्रष्ट धार्मिक नहीं हो सकता|"[13] इसी प्रकार विनोबा भावे पर विचार करते हुए उनके जीवन और आचरण की चर्चा आवश्यक समझते हैं| वे लिखते हैं " विनोबा भावे के शिक्षा-दर्शन पर विचार करते

[11] शैक्षिक उन्मेष, अप्रैल-जून 2018, पृ. 7
[12] शैक्षिक उन्मेष, अक्टूबर-दिसंबर,2018,पृ.12
[13] शैक्षिक उन्मेष, अप्रैल-जून 2018, पृ. 6

Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Research (JIMR)
E-ISSN:1936-6264| Impact Factor: 8.886|
Vol. 18 Issue 09, Sep- 2023
Available online at: https://www.jimrjournal.com/
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

समय उनकी जीवन पद्धति और जीवन जीने के लिए उनके द्वारा किये गए उपक्रमों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है |..... विनोबा भावे के अध्यात्म चिंतन का एक ठोस व्यावहारिक रूप भी था |"[14] इसी प्रकार शिवपूजन सहाय पर लिखते हुए वे उनकी इस बात पर ध्यान दिलाना नहीं भूलते कि चरित्रहीन का साहित्य क्षणभंगुर होता है| अपनी इस दृष्टि के कारण प्रो. पाण्डेय उन्हीं विचारकों पर आस्था रखते हैं जिनका आचरण और जीवन उच्च कोटि का और प्रेरणादायी हो| इसीलिए वे विशेष रूप से 20 वीं शती के विचारकों--स्वामी विवेकानंद, महामना मदन मोहन मालवीय, विनोबा भावे और पं. दीनदयाल उपाध्याय आदि का विवेचन करते हैं | इन पर लिखी सम्पादकीय टिप्पणियों से न केवल पांडेयजी की चिंतनधारा बल्कि सांस्कृतिक आलोचना धारा की वैचारिक पृष्ठभूमि को भी समझा जा सकता है| इन सबका केंद्रीभूत तत्त्व भारतीय जाति ही है | किन्तु, हजारों वर्षों की सुदीर्घ परम्परा में भारतीय जाति ने जिन महनीय मूल्यों को उपलब्ध किया वे कई बार संकटग्रस्त भी हुईं और तब उनकी रक्षा भी आवश्यक प्रतीत हुई है| संकट के क्षण में भारतीय जाति ने अपनी उत्कट ऊर्जा से अपने 'स्वत्व' की रक्षा की है| 19 वीं शती के चिंतकों में भी स्वत्व रक्षा का यह भाव दीखता है| स्वतंत्रता के बाद भी तुष्टीकरण और भारत विरोधी शक्तियों के कारण भारतीय जाति के स्वत्व पर राजनीतिक और बौद्धिक आक्रमण होते रहे हैं| ऐसे समय प्रो. पाण्डेय स्वत्व की रक्षा के प्रयास में भी संलग्न दिखाई पड़ते हैं | स्वत्व की यह चिंता प्रो.पाण्डेय को 19 वीं शती के विचारकों और लेखकों-कवियों से जोड़ती है|

वस्तुत: भक्ति आन्दोलन में जिस 'स्वत्व-संघर्ष' ने एक महान आन्दोलन का रूप ग्रहण किया वही 'स्वत्व' 19 वीं शती के आन्दोलन या नवजागरण का केन्द्रीय तत्त्व है| चाहे 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम हो अथवा द्विवेदी युग या छायावाद सबके लिए स्वत्व महत्वपूर्ण है | भारतेंदु के 'स्वत्व निज भारत गहै' से लेकर निराला की तुलसीदास कविता इसी भावभूमि पर रची गयी है| इस स्वत्व की पहचान और इसके अनुरूप मूल्य-दृष्टि का निर्माण आलोचना का भी धर्म है| नन्द किशोर पाण्डेय की आलोचना इस मूल्य-दृष्टि को विकसित करती है| इस स्वत्व के विविध आयाम हैं - स्वधर्म, स्वभाषा, स्वदेशी,स्वदेश और स्वाभिमान| उनके चिंतन में ये सारे आयाम मौजूद हैं|

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय के लिए पं. दीनदयाल उपाध्याय, स्वामी विवेकानंद और महामना के महत्त्वपूर्ण होने का कारण उनका भारत के 'स्वत्व' की पहचान और उसके अनरूप जीवन और चिंतन की दिशा की खोज है| उन्हें भारत की प्रकृति की पहचान है इसलिए उनका चिंतन आर्थिक, सास्कृतिक और राष्ट्रीय जीवन की दिशा तय कर सकता है| दीनदयाल उपाध्याय पर लिखते हुए पांडेयजी ने सर्वप्रथम उनके

[14] शैक्षिक उन्मेष , जनवरी-मार्च 2019, पृ. 6

Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Research (JIMR)
E-ISSN:1936-6264| Impact Factor: 8.886|
Vol. 18 Issue 09, Sep- 2023
Available online at: https://www.jimrjournal.com/
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

'चिति' की चर्चा की है जो राष्ट्र का 'स्वत्व' है| वे लिखते हैं " 'चिति' को समझे बिना राष्ट्र को अक्षुण्ण रखना कठिन है | भारत जैसा प्राचीन राष्ट्र तमाम प्रकार की आतंरिक समस्याओं और बाह्य आक्रमणों के बावजूद पूरी अस्मिता के साथ खड़ा है तो वह कुछ ऐसी शक्तियाँ हैं जो उसे चिरजीवी बनाए हुए है| वह चिरजीवनी शक्ति 'चिति' है| वे बार-बार राष्ट्र की चिरन्तन शक्ति को समझने का आग्रह करते हैं| भारतीय राजनीति, अर्थव्यवस्था और शैक्षिक चर्चाओं में तथा इससे सम्बन्धित नीतियों के निर्माण के समय बौद्धिक वर्ग निरंतर अपने राष्ट्र की 'चिति' को विस्मृत करता जा रहा है| पंडित जी पर यह लंबा सम्पादकीय लिखते समय मुझे लगा कि 'चिति' शब्द के उल्लेख के साथ बात प्रारम्भ करनी चाहिए |"[15] प्रारम्भ में ही 'चिति' शब्द का उल्लेख नन्द किशोर पाण्डेय जी की दृष्टि का सहज ही परिचय दे देता है | यह 'चिति' ही भारत का स्वत्व है| स्वत्व उनके चिंतन के लिए इतना महत्वपूर्ण है कि प्रगतिशील विद्वान् राहुल सांकृत्यायन उनके लिए इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि वे भारत के स्वत्व को विश्वपटल पर स्थापित करते हैं | हिन्दी अनुशीलन के जुलाई- दिसंबर 2017 अंक में राहुल सांकृत्यायन पर लिखी उनकी संपादकीय का शीर्षक ही है 'विश्व पटल पर स्वत्व की अनुभूति और राहुल को पढ़ना'| यद्यपि राहुल जी कम्युनिस्ट थे और कई स्थलों पर उन्होंने भारतीय चिन्तन प्रणाली की आलोचना भी की, किन्तु उन्होंने भी भारतीय जाति के स्वत्व को अपनी लेखनी द्वारा विश्व पटल पर रखा इसलिए वे प्रो. पाण्डेय के लिए महत्वपूर्ण हैं | प्रो. पाण्डेय के अनुसार " इस राहुल सांकृत्यायन में रामोदार साधु(रा. स.) अनवरत विद्यमान रहा | राहुल जी नामकरण के संक्षेप को चाहते भी ऐसा ही थे जिससे दोनों नाम सुरक्षित रहे | परम वैष्णवता से महाभिनिष्क्रमण के बीच की गार्हस्थ्य यात्रा कितनी रोचक, रोमांचक और आस्वादक है !"[16] रामोदर साधु के रूप में प्रो. पाण्डेय राहुल जी के उस व्यक्तिव को देख रहे हैं जो प्रगतिशील होने पर भी भारत के स्वत्व की विश्व पटल पर अनुभूति करता है| राहुल सांकृत्यायन ने कम्युनिस्ट होते हुए भी हिन्दी तथा नागरी लिपि का सदैव समर्थन किया तथा विचारधारा से परे जाकर संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का पक्ष लिया | स्वभाषा के प्रति यह प्रेम राष्ट्र के स्वत्व का ही एक रूप है जो राहुल जी में प्राप्त होता है| इसलिए भी राहुल सांकृत्यायन प्रो. पाण्डेय के लिए महत्तवपूर्ण हैं|भारतीय चिन्ताधारा की एक प्रमुख विशेषता है व्यष्टि और समष्टि दोनों का स्वीकार | सांस्कृतिक आलोचना इसे मान कर चलती है कि व्यक्ति और समाज अविरोधी हैं| दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद के दर्शन से इसे पुष्ट किया| प्रो. पाण्डेय की आलोचना दृष्टि इसी को स्वीकार करती चलती है | दीनदयाल उपाध्याय पर लिखते हुए वे उनके दर्शन को स्वीकार करते हैं " व्यक्तियों की व्यक्तिगत योग्यताएँ बहुत महत्तवपूर्ण हैं

[15] शैक्षिक उन्मेष, जुलाई -सितम्बर 2018, पृ. 5
[16] हिन्दी अनुशीलन, जुलाई-दिसंबर 2017, पृ. 16

Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Research (JIMR)
E-ISSN:1936-6264| Impact Factor: 8.886|
Vol. 18 Issue 09, Sep- 2023
Available online at: https://www.jimrjournal.com/
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

लेकिन अमरत्व की प्राप्ति सम्भूति से ही होती है|... उन्होंने 'मैं' के वास्तविक रूप 'हम' को ग्रहण करने के लिए जीवन-पर्यंत सुझाव दिया|"[17] मैं का हम में पर्यवसान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी दिशाओं के लिए महत्त्वपूर्ण है|

सांस्कृतिक आलोचना किसी प्रकार के अपवर्जन या बहिष्कार का समर्थन नहीं करती | सहिष्णुता और स्वीकार की यह दृष्टि वैश्विक चिंता करती है| लोकतंत्र, मानवाधिकार, पर्यावरण सबको यह सनातन दृष्टि से देखती हुई सर्वे भवन्तु सुखिन: के सिद्धांत का अनुसरण करती है | भारत की विचारधारा दुनिया को शान्ति दे सकती है इसी विश्वास और उम्मीद के साथ सांस्कृतिक आलोचना अग्रसर हो रही है | प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय के अनुसार " दुनिया में शान्ति भारत की विचारधारा ही ला सकती है | विश्व को यदि अहिंसक और शांतिप्रिय रहना है तो उसे भारतीय शिक्षा को अपनाना होगा| भारत को अपनी ओर से भी यह तैयारी करनी होगी कि वह विश्व को शांतिप्रिय नेतृत्व दे सके|"[18] सांस्कृतिक आलोचना और प्रो. पाण्डेय का लेखन इसी तैयारी का प्रयास है| अपने व्यापक उद्देश्य के कारण सांस्कृतिक आलोचना एक व्यापक विश्व दृष्टि रखती है| सांस्कृतिक आलोचना राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जीवन मूल्य को लेकर चलती है जिसमें समग्रता, समन्वय और सत्य का आग्रह है| समग्रता के बावजूद यह दलित या स्त्री साहित्य की उपेक्षा नहीं करती, बल्कि बड़े परिप्रेक्ष्य में उस पर विचार करती है| सबको समाहित करते हुए समाज जीवन की चिंता करते हुए उसे अविरोधी मानते हुए, विरोध के तत्वों का समाहार करते हुए | आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता जैसे अनेक आग्रहों-दुराग्रहों का समाधान सांस्कृतिक आलोचना से ही संभव है | यह सार्वभौमिकता के साथ स्थानीयता, एक सत्य की केन्द्रीयता के साथ छोटे अविरोधी सत्य, महावृत्तान्तों के साथ लघु वृत्तांतों की स्थिति को सम्भव करनेवाली आलोचना है| यह देशी-विदेशी, प्राचीन-अर्वाचीन सबसे ग्रहण करती हुई और सबको स्वदेशानुकूल और युगानुकूल बनाती चलती है| वर्तमान सांस्कृतिक और सम्वेदनात्मक विच्छेद को दूर करने की क्षमता भी इस आलोचना में है और वर्तमान आलोचना की विवेकहीनता और उच्छृंखलता को नियंत्रित करने में भी यह समर्थ है| प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय इस धारा के सामर्थ्यवान आलोचक हैं| भारतीय जाति ने जिन महनीय मूल्यों को उपलब्ध किया है और अब तक भारतीय जाति की कला, संस्कृति और साहित्य में जो उपलब्धियां रही हैं उन सबको समग्रता में लेकर साहित्य के मूल्यांकन की प्रविधि को विकसित करने में प्रो. पाण्डेय की महत्वपूर्ण भूमिका रही है| वर्तमान

[17] शैक्षिक उन्मेष, जुलाई- दिसम्बर 2018, पृ.6
[18] शैक्षिक उन्मेष , अप्रैल-जून 2018, पृ.

Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Research (JIMR)
E-ISSN:1936-6264| Impact Factor: 8.886|
Vol. 18 Issue 09, Sep- 2023
Available online at: https://www.jimrjournal.com/
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

हिन्दी आलोचना सांस्कृतिक आलोचना की ओर देख रही है और सांस्कृतिक आलोचना प्रो. पाण्डेय की ओर|